**International Journal of Advanced Research and Development**
**ISSN: 2455-4030**
**Impact Factor: RJIF 5.24**
**www.advancedjournal.com**
**Volume 3; Issue 4; July 2018; Page No. 46-48**

# आनंद के स्वरूप का दार्शनिक अध्ययन

**डॉ॰ अमिय कुमार साहु**

एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) एवं प्रमुख, भाषा संकाय राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे, महाराष्ट्र, भारत।

## सारांश

यह शोध-लेख, आनंद और उसके स्वरूप पर आधारित है। आज की दुनिया तेजी से विकास की ओर बढ़ रही है। नए नए शोधों ने, नए नए आविष्कारों ने लोगों को सुख-सुविधा के उच्चतम शिखर पर पहुंचा दिया है। उसके पास हर सुख-सुविधा के सामान होने के बावजूद, ज़्यादातर लोग आनंदित नहीं है। क्या सुख-सुविधाएं आनंद प्राप्त करने के साधन हो सकती हैं? 'आनंद' क्या है? इसका स्वरूप क्या है? भारत में वेद काल से लेकर आज तक, भारत और पाश्चात्य के दर्शनिकों, चिंतकों ने इसे सोचने-समझने की कोशिश की है; इसे परिभाषित करने की कोशिश की है। इन्ही परिभाषाओं का सम्पूर्ण विष्लेषण करना और एक नतीजे तक पहुँचना, इस शोध-लेख का उद्देश्य है।

**मूल शब्द :** आनंद, मनुष्य, सुख-सुविधा।

## प्रस्तावना

आज मनुष्य उत्तर आधुनिकता के दौर से गुजर रहा है जो पूंजी का दौर है या यों कहें पूजीवादी आतंक का दौर है। आज हर एक मनुष्य के दिलो-दिमाग पर पूजीवादी आतंक के अनुचर विद्रुपता, कुत्सितता, भयंकरता, जघन्यता, विकरालता, जुगुप्सा आदि छाए हुए हैं। पूंजीवाद ने सामाजिक विषमता और शोषण को फैलाया है जिसके कारण मनुष्य सामुहिकता से कटता गया है। उसने अपने मुनाफा को प्रधान मानते हुए अहंवादी, व्यक्तिवादी बन गया है। अहंवादिता और व्यक्तिवादिता ने मनुष्य को इस मुकाम तक पहुंचा दिया है कि वह आस्थाहीन हो गया है। यहां तक कि उसने खुद अपने प्रति आस्था खो दी है। अकेलापन, संत्रास, घुटन का अनुभव करते हुए अपने ऊपर भी भरोसा नहीं कर पा रहा है। कवि अरुण कमल ने इस आस्थाहीन मानव का सही चित्र प्रस्तुत किया है -

इस नए बसते इलाके में/ जहां रोज बन रहे हैं नए नए मकान/ मैं अक्सर रास्ता भूल जाता हूं/ धोखा दे जाते हैं पुराने निशान/ .... यहां स्मृति पर भरोसा नहीं। एक ही दिन में पुरानी पड़ जाती है दुनिया। [1]

हर रोज उसमें नैतिकता, कर्तव्यपरायणता, भव्यता, मधुरता आदि भाव एक-एक कर घटते गए हैं। उसमें अर्थलुलुपता, विकृत सेक्स की भावना भर गई है, जिसके कारण वह अपराधी, हत्यारा, लुटेरा, बलात्कारी, तस्कर बन गया है। रमेश कुंतल मेघ ने सही कहा है "हमारे उपभोक्ता समाज में सेक्स तथा हिंसा और उसके जघन्य मेल वाला संत्रास, हमारी चिति में धंस गई है"।[2] यही कारण है कि आज मानव में आनंद मर गया है जो हर मनुष्य के जीवन का अंतिम उद्देश्य है।

यहां यह तर्क उठना स्वाभाविक है कि आज मानव के पास भव्य-विशाल प्रसाद है, नई नई कारें हैं, सोने का भंडार है, खाने के लिए उसे हर दिन मांस-मदिरा मिलता है; फिर वह कैसे सुखी नहीं है, आनंदित नहीं है। इसका उत्तर हो सकता है क्या सुखी होना आनंदित होना है? क्या आनंद इन विशाल प्रसाद, नई-नई मोटर गाड़ी में बसता है? जिसके पास कार, बंगला नहीं है; वह क्या निरानंद है? अतः यहां आनंद क्या है, इसका स्वरूप क्या है, इसका विवेचन जरूरी है।

## भारतीय चिंतन

वेद में सोम नाम के एक देवता की बात की गई है; उसे अमृत रस का, आनंद का अधिपति बतलाया गया है। ऋग्वेद में यह कहा गया है कि "सोमरस (आनंद रस) छाननी (चेतस) से पवित्र होने के बाद प्राणी के अंदर प्रकट होता है और उसके अंग में सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। पर जो अपरिपक्व है और जिसका शरीर अग्नि के ताप में पड़कर तप्त नहीं हुआ है, वह उस आनंद का आस्वादन नहीं कर पाता। जो ज्वाला में पक कर तैयार हो गए हैं वही उसे धारण करने में समर्थ होते हैं; उसका स्वाद ले पाते हैं"।[3] जिसकी चेतना या मन संकीर्णता और द्विधा से मुक्त है, उसीसे सोमरस छनकर शरीर में व्याप्त हो जाता है। जो मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध मोह, मद से मुक्त होकर प्रेम, स्नेह, ममता आदि से युक्त हो वही आनंद रस का अधिकारी बन पाता है; जिसकी चेतना खंडित हो वह आनंद रस को प्राप्त नहीं कर सकता। उसमें से आनंद, खुशी इस प्रकार निकल जाता है जिस प्रकार कच्चे घड़े में पानी रखने से यह निकल जाता है। पानी के लिए पका हुआ घड़ा चाहिए। अतः जिसकी चेतना पकी हुई हो, जो संकीर्णता से बाहर आकर विश्व के हर कण-कण को अपना समझता हो, उसमें अनायास आनंद समा जाता है, वह अखंडानंद का अधिकारी बन जाता है।

वेदांत दृष्टिकोण चित और आनंद को अभिन्न सिद्ध करता है। यहां चित से मतलब प्रज्ञातीत चेतना से है जो अनुभवातीत, परम यथार्थ है। यह आनंद मनुष्य के साधारण आनंद (जिसे सांसारिक सुख कहा जा सकता है) से करोड़ों गुना बेहतर है। तैतरीय उपनिषद में मनुष्य के आनंद से लेकर चिदानंद की यात्रा को प्रस्तुत किया गया है। "पहले मनुष्यानंद, फिर मनुष्यगंधर्व आनंद, देवगंधर्व आनंद, देवानंद, इंद्रानंद, बृहस्पति आनंद, प्रजापति आनंद, अंत में ब्रम्हानंद जो चिदानंद है"।[4] दूसरा आनंद पहले से, तीसरा आनंद दूसरे से क्रमश सौ गुना बेहतर है। यही वह आनंद है जहां द्वैतता की भावना नहीं, मेरा और तुम्हारा का संसार नहीं, भय नहीं, दुख नहीं; यहां पर सिर्फ आनंद तथा अखंडता है, परमानंद है। इस आनंद के सामने इंद्रियानंद हेय है। सांसारिक सुख, भोग तुच्छ है। इसमें खुद के अस्तित्व की चिंता नहीं रहती, विश्व अस्तित्व की चिंता रहती है। न्याय और सांख्य दर्शन भी उपनिषद की तरह परम अवस्था को सांसारिक अवस्थाओं से मुक्त मानते हैं, जो आनंदरुपा है। कृष्ण कुमार सक्सेना लिखते हैं "न्याय और सांख्य दोनों ही किसी रूप में उसी मान्यता में सहमत है कि परमावस्था शुद्धता, गुण विहिनता तथा सांसारिक अवस्थाओं के पूर्ण नकार की अवस्था है"।[5]

भरतमुनि का नाट्य शास्त्र ही पहली रचना है जिसमें रस के स्वरूप के बारे में विचारा गया है। उनके रस निष्पति संबंधी सूत्र 'विभानुभावसंचारी संयोगात रस निष्पति' को मूल मानकर इसके विवेचन-विश्लेषण संबंधी एक लंबी परंपरा विकसित हुई। इस परंपरा के पुरोधा विश्वनाथ, अभिनवगुप्त, शंकुक, लोल्लट आदि थे। विश्वनाथ ने अपनी पुस्तक 'साहित्य दर्पण' में रस के स्वरुप के विष्लेषण के क्रम में इसे स्वप्रकाश

आनंद, ब्रम्हानंद सहोदर बतलाया है। इसे स्वप्रकाशानंद इसलिए कहा गया है कि रसास्वाद के समय सहृदय लोक स्वार्थ से ऊपर उठ जाता है। इस समय उसे कुछ भी भान नहीं होता। उसे संसार के सुख-दुख प्रभावित नहीं करते। माया, मोह, भोग अपनी ओर नहीं खींचते। वह हर प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त हो जाता है और उसका चित विश्रांति का अनुभव करता है। इस अवस्था में वह रस का आस्वाद कर पाता है। यह रस श्रृंगार का हो अथवा करुण का; सबमें आनंद का अनुभव करता है। इस आनंद को विश्वनाथ ब्रम्हानंद से थोड़ा नीचे मानते हैं। कारण यह है कि काव्यानंद स्थायी नहीं है। सहृदय कुछ समय के लिए चितविश्रांति के समय आनंद का अनुभव करता है। काव्य का प्रभाव खत्म होते ही उसका चित फिर सांसारिकता में चंचल हो उठता है; चाहे काव्यानन्द, ब्रम्हानंद हो या न हो लेकिन आनंद के संदर्भ में एक बात तो स्पष्ट है कि आनंद की अवस्था मानव के स्वार्थ के परे की अवस्था है।

चिंतक रामचंद्र शुक्ल आनंद को प्रेम में देखते हैं। यह प्रेम मानव का साधारण प्रेम नहीं है। साधारण प्रेम में अधिकार की भावना रहती है, अहं की भावना रहती है। इसमें मैं, तुम की भावना रहती है। इसमें 'मैं' और 'तुम' मिलकर एकाकार नहीं हो पाते। प्रेम की गली अति संकरी है, इसमें एक साथ दोनों समा नहीं सकते।

> जहां मैं हूं वहां तू नहीं, जहां तू है वहां मैं नहीं
> प्रेम गली अति संकरी दोनों तिही न समाही।[6]

उच्चतम प्रेम में प्रिय और प्रेमी मिलकर एकाकार हो जाते हैं। "प्रिय के हृदय का आनंद प्रेमी के हृदय का आनंद हो जाता है। अतः एक ओर तो प्रिय के आनंद का मेल हो जाने से प्रेमी संसार की नाना वस्तुओं में कई गुणा अधिक आनंद का अनुभव करने लगता है"।[7] इस अवस्था में वह बहता जाता है, उसका चित बहता है; संसार के कण-कण में उसे अपना प्रिय दिखता है और वह संसार के कण-कण में आनंद को देखता है। सबके आनंद में वह अपना आनंद ढूंढ लेता है। यही आनंद विश्वजीवन को, अखिल जीवन को एकता में बांधता है। कुल मिलाकर आनंद के प्रति भारतीय दृष्टिकोण आध्यात्मिक और सकारात्मक रहा है। यह आध्यात्मिक आनंद, इस संसार में रहकर प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए जंगल या हिमालय जाने की जरुरत नहीं, बशर्ते हमें लोक स्वार्थ से, मोह से ऊपर उठकर, प्रेम के सागर में डूबकर, अपनी आत्मा, अपने चित को शुद्ध करना होगा; तब जाकर हमें अखंडानंद की प्राप्ति होगी।

### पाश्चात्य चिंतन

पाश्चात्य जगत में प्लेटो ने आनंद की व्याख्या करते हुए उसका संबंध सच्चे सौंदर्य के साथ स्थापित किया है। उनका मानना है कि "आनंद सच्चे सौंदर्य से प्राप्त होता है। वह उस वस्तु में सच्चा सौंदर्य को देखता है जो स्वयम सुंदर है और अपनी इस सुंदरता के लिए वह किसी पर निर्भर नहीं है। इन वस्तुओं के गुण के रूप में यह अकृत्रिमता, शुद्धता, सत्य को स्वीकार करता है"।[8] यही आनंदमय होता है और आनंद प्रदान करता है। सच्चे सौंदर्य का आनंद वही अनुभव कर पाते हैं जिसकी आत्मा पवित्र हो, जिस का चित शुद्ध हो। सांसारिक सुख में डुबे रहने वाला व्यक्ति इससे वंचित हो जाता है। "जो भ्रष्ट पुरुष है वह सच्चे सौंदर्य का दर्शन नहीं कर पाता। वह सांसारिक गुणों को ही देख पाता है तथा उसे आनंद प्राप्त करने में लग जाता है। वह जंगली जानवर की तरह उससे सुख प्राप्त करना ही अपना लक्ष्य समझता है"।[9] आनंद सच्चा सौंदर्य का गुण है जिसे शुद्ध चित्त वाला व्यक्ति अनुभव कर सकता है।

प्लेटो का आनंद दर्शन आध्यात्मिक था। वे प्रत्येय जगत और दृश्य जगत को अलग-अलग मानते थे। पर अरस्थु दोनों के संयोग की बात करते हैं। "यह ब्रम्हांड भौतिक पदार्थों (वस्तुओं) और तत्वों (प्लेटो के निर्विकल्प प्रत्यय के समकक्ष) का संयोग है"।[10] अर्थात वे प्रत्येक पदार्थ को रूप और अंतर वस्तु का मेल मानते हैं। अतः दृश्य जगत सिर्फ अनुकृति नहीं है, इसमें भी आनंद की सत्ता विद्यमान रहती है। यद्यपि इसे अनुकृति माना जाए तो भी इसमें आनंद है। पहला कारण तो यह है कि अनुकृति एक जन्मजात गुण है। बच्चा अनुकृति से ही सब कुछ सीखता है। दूसरा कारण यह है कि अनुकृति अपनी अनुकृत वस्तु से और भी सुंदर होती है। उदाहरण के रूप में हम किसी कुरुप प्राणी या पदार्थ को प्रत्यक्ष देखकर घृणा भाव से भर उठते हैं, पर जब इनके चित्र देखते हैं तो हमें अपार आनंद का अनुभव होता है। अतः अनुकरण का परिणाम भी आनंद है।

प्लाटोइनस आनंद को आत्मा की एक अवस्था मानते हैं। वे आत्मा और शरीर के सहयोग से आनंद की उत्पत्ति मानते हैं। वे आत्मा को दो भागों में बांटते हुए कहते हैं कि "आनंद का अनुभव केवल निम्न आत्माएं ही करती हैं। उच्च आत्मा को उसकी जानकारी तो रहती है पर वे इनका अनुभव नहीं करती"।[11] उच्च आत्मा आनंद का इसलिए अनुभव नहीं कर पाती है क्योंकि वह स्वयं आनंदमय है। उसे अपने गुणों की जानकारी तो प्राप्त होती है पर उसे अनुभव नहीं किया जा सकता है।

पश्चिम जगत में आनंद के दार्शनिक पक्ष का विवेचन-विश्लेषण बहुत कम हुआ है। उसे कला के साथ जोड़कर देखा गया है। लोंजाइनस ने उदात्त कला से आनंद की उत्पत्ति मानी है। उदात्त रचना वह है जिसको बार-बार पढ़ते रहने से भी हृदय प्रफुल्लित आनंदित होता रहता है। डेकार्ट आनंद को बुद्धि के साथ जोड़ते हैं। इनके अनुसार "किसी विलक्षण साहसिक कार्य या उन्मुक्त कल्पना की रचना पढ़ने से या उसका मंच पर प्रस्तुतिकरण देखने से हममें एक अनुराग या संवेग उत्तेजित होता है, तथा उसके साथ हमें एक बौद्धिक आह्लाद प्राप्त होता है"।[12] लॉक कला का परिणाम नैतिक सुधार नहीं मानते हुए, उसका परिणाम आनंद में मानते हैं। कला को आनंददायक मानते हुए इस आनंद को छल से उत्पन्न मानते हैं। इसका कारण यह है कि कला असत्य कल्पना की उपज है। यद्यपि कल्पना का आनंद दिव्यानंद नहीं है फिर भी यह बौद्धिक आनंद से बहुत ऊपर है, क्योंकि कल्पना में वह बिना कुछ पाए भी बहुत कुछ पा लेता है। इसमें जो आनंद मिलता है वह शायद धन दौलत से नहीं मिल सकता। बौद्धिक हो या कल्पना का आनंद, यह क्षणभंगुर है। आदमी इसको पाकर कुछ समय के लिए आनंद के सागर में डुबकी तो लगाता है, पर थोड़ी ही देर में दुख के रेगिस्तान में छटपटाता है। यह इसलिए क्षण स्थाई है कि इसमें पार्थिव आवश्यकता की झलक रहती है। काँट जिस आनंद की बात करते हैं वह चिरस्थायी और सार्वभौम है और जो कभी मरता नहीं। यह आनंद बिना किसी आवश्यकता के मिलता है और यह सौंदर्य प्रदत्त होता है। उनका कहना है "सौंदर्य प्रदत्त आनंद का लक्ष्य कोई पार्थिव आवश्यकता नहीं है"।[13] पार्थिव आवश्यकता हमें सुख दे सकती है आनंद नहीं। सुख के साथ दुख जुड़ा रहता है जो जितना सुखी होता है वह उतना दुखी भी होता है। जैसे जैसे सुख बढ़ता जाता है वैसे वैसे उसकी लालसा बढ़ती जाती है। ज्यादा से ज्यादा सुख प्राप्त करने के लिए आदमी हमेशा दुखी रहता है। वह हमेशा अभाव का अनुभव करता है और सुख में पूर्ण नहीं हो पाता।

### निष्कर्ष

आनंद का अनुभव पूर्णता का अनुभव है। जहां कोई भाव नहीं, अभाव नहीं, दुख नहीं, सुख नहीं। कुछ है तो सिर्फ आनंद है जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। यह अनुभव आत्मा की पूर्णता का अनुभव है, परम सत्ता का अनुभव है, यह अध्यात्मिक अनुभव है। यह आध्यात्म और कुछ नहीं हमारे अस्तित्व के प्रति हमारा जो विश्वास है वही है। इस अनुभव में स्थायित्व है, चिरंतनता है, सत्य का बोध है और यही आनंद है।

### सन्दर्भ


1. अरुण कमल- नए इलाके में- पृ 56
2. रमेश कुंतल मेघ- साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-2, पृ 404

3. श्री अरविंद-वेद रहस्य, अरविंद आश्रम, पांडिचेरी-71 पृ 441
4. प्रो सत्यव्रत सिद्धालंकार- एकादशोपनिशद, विजयकृष्ण लाखनपाल एंड पनी, देहरादून - पृ 250-251
5. श्रीकृष्ण सक्सेना – भारतीय दर्शन में चेतना का स्वरूप पृ 144
6. पुष्पपाल सिंह – कबीर ग्रंथावली पृ 145
7. रामचंद्र शुक्ल- चिंतामणी, इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, इलाहवाद, पृ 61
8. सुनृत कुमार वाजपेयी- पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास, राधा प्रकाशन नई दिल्ली-02, पृ 20
9. सुनृत कुमार वाजपेयी- पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास, राधा प्रकाशन नई दिल्ली-02, पृ 21
10. रमेश कुंतल मेघ- साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, न्यी दिल्ली-2 पृ 71
11. सुनृत कुमार वाजपेयी- पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास, राधा प्रकाशन नई दिल्ली-02, पृ 67
12. सुनृत कुमार वाजपेयी- पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास, राधा प्रकाशन नई दिल्ली-02, पृ 116
13. डॉ राजकुमारी – पंत की सौन्दर्य चेतना का विकास, जीवन ज्योति प्रकाशन, दिल्ली - पृ 38